

अन्ना का अनशन : प्रहसन बन कर रह गया

भ्रष्टाचार का मुद्दा इस देश में इतने जोर-शोर से छा गया है कि यह सरकार के लिए सिरदर्द बन गया है। इस मुद्दे पर पहले योग गुरु बाबा रामदेव ने अगले लोकसभा चुनाव में सरकार को उखाड़ फेंकने की चुनौती दी जिसे राजनेताओं ने गंभीरता से नहीं लिया। यद्यपि जनता के कुछ हिस्सों को अपनी योजना से प्रभावित कर पाने में बाबा सफल रहे, पर लोकसभा चुनाव अभी दूर हैं और बाबा की राजनीतिक महत्वाकांक्षायें राजनीतिक रूप से सजग बुद्धिजीवियों की समझ में आ रही हैं। बाबा विदेशों में जमा काला धन वापस लाने पर जोर दे रहे हैं और उससे विकास का सपना लोगों को दिखा रहे हैं। पर जागरूक लोग इस बात को समझ रहे हैं कि विदेशों से काला धन लाना इतना आसान नहीं होगा और काले धन से विकास कार्यों को अंजाम नहीं दिया जा सकता। विदेशों की तो छोड़ें, देश में भी काले धन की कमी नहीं है, पर सरकार उस काले धन को पकड़ पाने में अक्षम है। दरअसल, उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व वाली पूंजीवादी और मुनाफ़े पर आधारित अनियंत्रित बाज़ारवादी व्यवस्था में काला धन स्वाभाविक रूप से पैदा होता है और इस पर रोक नहीं लगाई जा सकती। योग अथवा मंत्र के माध्यम से किसी भी पूंजीपति की मानसिकता में यह बदलाव नहीं लाया जा सकता कि वह काली कमाई करना बंद कर दे। इसलिए बाबा रामदेव की भ्रष्टाचार से मुक्त भारत बनाने की योजना कारगर होने वाली नहीं है, क्योंकि वह वर्तमान आर्थिक व्यवस्था की गतिकी को नहीं समझते।

इसी प्रकार प्रमुख समाजसेवी और भ्रष्टाचार के खिलाफ़ मुहिम चलाने के लिए चर्चित महाराष्ट्र के अन्ना हजारे ने लोकपाल विधेयक की जगह जन लोकपाल विधेयक लाने के लिए दिल्ली के जंतर-मंतर पर आमरण अनशन की शुरुआत कर दी। इनके साथ स्वामी अग्निवेश, देश की प्रथम पूर्व महिला आईपीएस किरण बेदी और मैग्सेसे पुरस्कार विजेता प्रसिद्ध सूचना अधिकार कार्यकर्ता अरविंद केजरीवाल हैं। अन्ना हजारे के अनशन ने सरकार को मुसीबत में डाल दिया, क्योंकि जनभावना पूरी तरह से हजारे के साथ थी और वर्तमान सत्ता के विरोधियों ने भी इसे एक मुद्दा बना लिया।

कायदे से देखा जाये तो अन्ना हजारे जो कह रहे हैं, उसमें कुछ भी गलत नहीं है, पर हजारे इस मूल प्रश्न पर नहीं आते कि आखिर भ्रष्टाचार पैदा क्यों होता है। भ्रष्टाचार कोई आज पैदा होने वाली नयी बीमारी नहीं है। इस बीमारी की शुरुआत ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन के साथ ही भारतीय समाज में शुरू हो गई थी। भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी की सत्ता स्थापित करने वाला लार्ड क्लाइव जब ब्रिटेन वापस लौटा था तो भ्रष्टाचार के आरोप में उस पर मुकदमा चलाया गया था। क्लाइव भारत से लूट का इतना ज्यादा धन लेकर गया था कि उसे देख कर ब्रिटेन के बड़े-बड़े सामंतों की आंखें भी चौंधिया गई थीं। क्लाइव पर मुकदमा तो चलाया गया, पर साम्राज्य के प्रति उसकी सेवाओं को देखते हुए उसे भ्रष्टाचार के सभी आरोपों से बरी कर दिया गया और उसे 'बैरन ऑफ़ प्लासी' की उपाधि दी गई। ईस्ट इंडिया कंपनी भारत से व्यापार भी करती थी और यहां शासन भी करती थी। उसके शासन में हर स्तर पर भ्रष्टाचार का बोलबाला था। कंपनी के कर्मचारियों को निजी स्तर पर व्यापार करने की अनुमति नहीं थी, पर वे अफसरों को रिश्वत दे कर निजी व्यापार भी करते थे, क्योंकि इसमें काफ़ी मुनाफ़ा था। इसी प्रकार उच्च पदों पर बैठे अंग्रेज़ अफसर भी अपना निजी व्यापार चलाते थे। 1857 के पहले स्वतंत्रता संग्राम के असफल हो जाने के बाद जब ईस्ट इंडिया कंपनी का

लोकतंत्र के तमाशे का समापन

जंतर-मंतर का तमाशा अब खत्म हो चुका है। वहां से मदारी और जमूरे अब जा चुके हैं। तमाशबानों की जमात भी अब वहां नहीं है। लेकिन देश के पैमाने पर तमाशा अभी जारी है। देश के बड़े पूंजीपतियों के अखबार टाइम्स आफ इंडिया ने, जो खुल्लमखुल्ला बड़े पूंजीपतियों का पक्ष लेता है, और जो खुद उसके एक प्रबंधक की जुबान में, विज्ञापनों की पैकेजिंग का साधन मात्र है, यह घोषित कर दिया है कि देश में एक क्रांति हो चुकी है। देश और दुनिया की ज्यादातर आखों में छिपी हुई यह क्रांति क्या है? यह है सरकार द्वारा एक नए लोकपाल विधेयक के लिए तैयार हो जाना। मजदूरों और किसानों को लूट कर उन्हें कंगाली डकेलने वाले पूंजीपतियों के लिए क्रांति का यही मतलब हो सकता है। भ्रष्टाचार के हर मर्ज की दवा यह लोकपाल बिल क्या बला है? इस सारे तमाशे के एक संगठनकर्ता अरविंद केजरीवाल के अनुसार इस लोकपाल बिल से केवल इतना होगा कि सीबीआई और सीबीसी नामक दो

के इंस्पेक्टर से लेकर प्रधानमंत्री तक और निचली अदालत से लेकर मुख्य न्यायाधीश तक सब आज इस पैसे से खरीदे जा रहे हैं। फिर लोकपाल क्या नहीं खरीदा जाएगा। यदि सारे भ्रष्टाचार का मतलब पैसे द्वारा पैसे के लिए नियम-कानूनों की ऐसी-वैसी करना है तो लोकपाल इससे कैसे बच जाएगा? क्या इससे उल्टा वह देश का सबसे भ्रष्ट निकाय नहीं बन जाएगा?

इस तरह देश की सारी समस्या का समाधान तो दूर, लोकपाल बिल स्वयं भ्रष्टाचार के मामले में भी केवल शिगूफ़ा भर है। इससे भ्रष्टाचार जरा भी कम नहीं होगा। फिर इतना बड़ा तमाशा जंतर-मंतर, इंडिया गेट से लेकर टी.वी. चैनलों तक क्यों खड़ा किया गया है? यह भारत के भ्रष्ट पूंजीवादी शासकों की सोची-समझी चाल है। इस चाल का खुलासा किरन-बेदी ने तब किया जब उन्होंने कहा कि वे अभी तक महाराष्ट्र में सिमटे अन्ना हजारे के देश के पैमाने पर ले आए। असल में देश का शासक वर्ग बहुत

बुरी तरह से भयभीत है कि महंगाई, बेरजगारी, भुखमरी और भ्रष्टाचार की वजह से भारत की जनता भी कहीं उसी तरह विद्रोह न करने लगे जैसे अरब देशों में जनता कर रही है। पिछले कुछ महीनों में तो भ्रष्टाचार के मामले में आंधी आई हुई है। देश की जनता बेहद गुस्से में है। इसीलिए इसके पहले की जनता विद्रोह कर सड़कों पर उतरे, शासकों ने इस गुस्से को उंडा करने की चाल चली।

सरकार, सभी पूंजीवादी पार्टियों, पूंजीपतियों की जूटन पर चलने वाले गैर सरकारी संगठनों (अरविंद केजरीवाल, अन्ना हजारे, किरन बेदी आदि) तथा पूंजीवादी प्रचारतंत्र (अखबार, टीवी) की मिली भगत से तब यह तमाशा आयोजित किया गया। यह सब पूर्व



संस्थाओं जो भ्रष्टाचार के मामले की छान-बीन करती हैं, सरकार से स्वतंत्र कर दिया जाएगा।

न इससे कम, न इससे ज्यादा। सरकार से स्वतंत्र होने पर ये संस्थाएं (या लोकपाल) नेताओं और अफसरों से स्वतंत्र काम कर सकेंगी। नेता और अफसर आज की तरह इन्हें अपने हिसाब से नहीं चला सकेंगे। ऐसा होने पर नेताओं और अफसरों डीढ़क भ्रष्टाचार के लिए सजा दिला पाना संभव हो जाएगा। तब इनके भ्रष्टाचार पर रोक लग जाएगी। यह होने ने पर, अन्ना हजारे के अनुसार 90 प्रतिशत भ्रष्टाचार समाप्त हो जाएगा। रहा-सहा 10 प्रतिशत भ्रष्टाचार जन-प्रतिनिधियों के वापस बुलाने (उनके चुनाव को रद्द करने) के अधिकार से समाप्त हो जाएगा, जिसके लिए वे बाद में आन्दोलन करेंगे।

लेकिन यदि हम मूर्खों के स्वर्ग में नहीं रहते हैं (जैसा कि जंतर-मंतर और इंडिया गेट के मदारी और जमूरे भारत और भारत की जनता को समझते हैं) तो सहज सा सवाल खड़ा हो जाता है कि इस सर्वशक्तिशाली लोकपाल पर कौन नियंत्रण रखेगा। उसे भ्रष्टाचार में लिप्त होने से कौन रोकेगा। आज सांसद और विधेयक (सांसद और विधानसभा) सर्वअधिकार संघ हैं। वे भ्रष्ट हो चुके हैं। समय-समय पर होने वाले चुनावों में हार का भय भी उन्हें भ्रष्टाचार से नहीं रोकता। तब लोकपाल को कौन भ्रष्ट होने से रोक लेगा। लोकपाल पर नेताओं और अफसरों का प्रभाव नहीं होगा। लेकिन उस पर पैसे का प्रभाव तो होगा। और पैसा ही तो मूल भ्रष्टकारी शक्ति है। नेता और अफसर लोकपाल को अपने राजनीतिक या सरकारी पद से नहीं उधा-धमका या ललचा पाएंगे। लेकिन ये पैसे के लालच से तो जरूर ही उसे डिगा देंगे। थाने

नियोजित था। इसका समय निश्चित था (क्रिकेट वर्ल्ड कप और आईपीएल के बीच का समय), इसका रूप निश्चित था (तिरों, वंदे मातरम के साथ भूख हड़ताल व कैडिल लाईट मार्च) और इसका परिणाम निश्चित था (कुछ दिनों बाद सरकार द्वारा बात मान लेना)। एक योजना के तहत अन्ना हजारे जैसे लगभग अनजान चेहरे को देश के पैमाने पर प्रोजेक्ट किया गया। इसी के तहत बाबा रामदेव जैसे एक अन्य तमाशेबाज व मजमेबाज को किनारे भी किया गया क्योंकि उसका अपना एक आधार है और वह रंग में भंग डाल सकता था। बाबा रामदेव इससे नाराज भी हो गए। और तो और बाद में भी इस फर्जीबाड़े को कैसे लंबे समय तक खोला जाए इसकी भी बारीकी से योजना बनाई गई। हमें आश्चर्य नहीं होगा यदि कुछ समय बाद पता चले कि इस पूरे तमाशे की योजना किसी इवेंट मैनेजमेंट कंपनी ने बनाई थी।

इस तमाशे के द्वारा देश के पूंजीपति वर्ग ने देश की आक्रोशित जनता को छलने का प्रयास किया है, खासकर आदर्शवादी नौजवानों को। पिछले दो-तीन महीनों में इस भ्रष्ट पतित व्यवस्था के समर्थकों ने बार-बार कहा है कि भारत में महंगाई, बेरजगारी, गरीबी, भ्रष्टाचार के बावजूद देश देशों की तरह विद्रोह नहीं होंगे क्योंकि यहां लोकतंत्र है, यहां जनता को विरोध करने का अधिकार है। पूंजीवादी व्यवस्था के इन समर्थकों ने इसका एक नमूना इस तमाशे द्वारा पेश भी कर दिया है। इससे पहले कि आक्रोशित जनता विद्रोह करे, वे इस तरह फर्जी विरोध प्रदर्शन आयोजित कर आक्रोश क्षरित कर देना चाहते हैं।

(इंकलाबी मजदूर केन्द्र)

शासन खत्म हुआ और प्रत्यक्षतः इंग्लैंड की महारानी का शासन शुरू हुआ तो भ्रष्टाचार कम होने की जगह और बढ़ता चला गया। अंग्रेजों ने अपनी न्यायप्रियता और ईमानदारी को खूब डंके पीटे थे, पर सच्चाई यह है कि वे पूरी तरह से अन्यायी, बेईमान और भ्रष्ट थे। इस देश की जनता को लूटने के लिए उन्होंने बड़े ही व्यवस्थित ढंग से कानून बनाये थे और घोर अन्याय पर आधारित न्याय-प्रक्रिया की आधारशिला रखी थी। 1947 में जब सत्ता का हस्तांतरण हुआ तो अंग्रेजों के पिट्ट भारतीय नेताओं को लगा कि इससे बेहतर और कोई कानून हो ही नहीं सकता जो अंग्रेजों ने बनाये हैं, इसलिए उन्होंने जिस का तस उस कानून को और उनकी सारी प्रशासनिक एवं न्यायिक व्यवस्था को स्वीकार कर लिया, क्योंकि इन शासकों का उद्देश्य भी जनता को लूटना ही था। इनकी यह सोच थी कि अंग्रेजों ने इस देश को काफ़ी लूट लिया, अब उन्हें भी जनता को लूटने का मौका मिलना चाहिए। लूट के तंत्र पर काबिज़ होने के लिए ये इतने बेताब थे कि इन्होंने देश का विभाजन भी स्वीकार कर लिया जिसमें लाखों लोगों का कत्लेआम हुआ और लाखों औरतों की अस्मत् लूटी गई।

दरअसल, यह बेताबी इसलिए थी कि सत्ता-हस्तांतरण में अब अगर और देर होती तो संभवतः पूंजीपति वर्ग के हाथों में सत्ता नहीं आती। देश में व्यापक जन विद्रोह शुरू हो गये थे। मजदूर वर्ग आगे बढ़ कर संघर्षों में कूद रहा था। यहां तक कि सेना में भी विद्रोह की स्थिति आ गई थी। नौसैनिकों के विद्रोह को भूला नहीं जा सकता, जिसके समर्थन में बंबई में आम जनता सड़कों पर उतर आई थी और मजदूर वर्ग भी हड़ताल कर रहा था। इस स्थिति का परिणाम क्या हो सकता था, इसे भांपने में न तो अंग्रेज़ शासकों ने गलती की और

न ही भारतीय पूंजीपतियों की पार्टी कांग्रेस ने। इसलिए अब इनके पास एक ही मुद्दा था - जल्दी से जल्दी सत्ता का हस्तांतरण। सत्ता का यह हस्तांतरण 15 अगस्त, 1947 को हुआ। उस समय द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के वातावरण में भ्रष्टाचार और कालाबाज़ारी का बोलबाला था। प्रधानमंत्री बनने के बाद पं. जवाहरलाल नेहरू ने घोषणा की थी कि भ्रष्टाचारियों और कालाबाज़ारियों को लैंपपोस्टों से लटका दिया जायेगा। पर यह एक थोथी घोषणा थी। इतिहास बताता है कि नेहरू ने भ्रष्टाचार पर काबू पाने के लिए कुछ भी नहीं किया। वे ऐसा कर भी नहीं सकते थे। वे उपनिवेशवाद से उत्तराधिकार में मिले पतनशील पूंजीवादी व्यवस्था के संचालक थे। उनका काम भ्रष्ट और लालची पूंजीपतियों के स्वार्थों की रक्षा करना था। अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'मैला आंचल' में फणीश्वरनाथ रेणु यह दिखलाते हैं कि किस तरह गांधीवादी वामनदास कालाबाज़ारी रोकने के अपने अहिंसक और व्यक्तिगत संघर्ष में शहीद हो जाता है। इधर का माल उधर करने वाले स्मगलर उसके शरीर पर से दर्जनों बैलगाड़ियां गुजार देते हैं और उसकी लाश के चीथड़े उड़ जाते हैं।

यह तो एक मामूली उदाहरण है। नेहरू-युग में एक से एक भ्रष्टाचार और घोटाले हुए जिन्हें दबा दिया गया। इस देश की भोली-भाली और अनपढ़ जनता नेहरू पर अटूट विश्वास करती थी।

नेहरू के शासन के बाद घोटालों की संख्या बढ़ती गई और भ्रष्टाचार बेलगाम होता चला गया। इस देश पर सबसे ज्यादा समय तक कांग्रेस ने शासन किया है और कांग्रेस के शासन में निरंतर भ्रष्टाचार फलता-फूलता रहा है। चंद वर्षों के लिए अगर दूसरे दलों और गठबंधनों ने देश पर शासन किया तो उन्होंने भी भ्रष्टाचार और घोटालों को बढ़ावा दिया। राजीव गांधी के

शासन में बोफोर्स घोटाला, बिहार में लालू का चारा घोटाला, सेना में कफ़न घोटाला, विदेशों से हथियार खरीदने में नेताओं और सैन्य अफसरों द्वारा ली जाने वाली मोटी दलाली, बाढ़ राहत घोटाला, सूखा राहत घोटाला यानी घोटाले ही घोटाले...। और अब दूरसंचार घोटाला, कॉमनवेल्थ खेल घोटाला, आदर्श घोटाला आदि-आदि। ये घोटाले पूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधि शासकों ने किये हैं। इन घोटालों में पूंजीपतियों और उनके हित में शासन चलाने वालों का लाभ निहित रहा है। घोटाले और भ्रष्टाचार पूंजीवादी व्यवस्था के लिए प्राण-वायु के समान हैं। इनके बिना मेहनतकशों के श्रम पर शोषण पर आधारित यह व्यवस्था चल नहीं सकती। इस व्यवस्था में यदि आप सरकारी लोकपाल विधेयक लाते हैं या अन्ना हजारे द्वारा प्रस्तावित जन लोकपाल विधेयक, फ़र्क कुछ भी नहीं पड़ना है। चाहे आधे जन प्रतिनिधि रख लीजिए और आधे सरकारी, भ्रष्टाचार और घोटाले पहले की भांति ही होते रहेंगे।

आज भ्रष्टाचार के मुद्दे पर सांसत में पड़ी कांग्रेस नेतृत्व वाली सरकार ने अन्ना की आधी-अधूरी मांगे मान लीं तो मीडिया द्वारा ऐसा प्रचार किया जा रहा है मानो जनता की कितनी बड़ी जीत हुई हो। मानो कोई क्रांति संपन्न हो गई हो। ऐसा इसलिए कि मीडिया भी पूंजीपति वर्ग का सेवक है। भ्रष्टाचार की शुरुआत तो तभी हो जाती है जब मेहनतकश की मेहनत की लूट शुरू होती है और यह बड़ी व्यवस्थित ढंग से एवं कानूनी रूप में होती है। इस पर कोई सवाल खड़ा नहीं किया जा सकता। पूंजीपति मेहनत की लूट गैरकानूनी ढंग से न कर सके, इसके लिए श्रम विभाग बनाया गया है। पर यह विभाग भी गैरकानूनी ढंग से पूंजीपतियों को मेहनत की लूट की छूट देता है और बदले में उनके आगे दुम हिला कर कुछ टुकड़े लेता है। यहां यह

स्पष्ट करना आवश्यक है कि अवैध तरीके से धन का हड़पा जाना ही घोटाला या भ्रष्टाचार कहा जाता है। सत्ताधारियों की लालच उन्हें विवश करती है कि वे धन को अधिकाधिक हड़पने के लिए नियम-कानूनों को ताक पर रख दें। ये कभी पकड़ में आते हैं तो कभी पकड़ में नहीं भी आते। पकड़े जाने पर भी सत्ताधारियों के खिलाफ़ कुछ खास होता-जाता नहीं, क्योंकि कानूनी को गैरकानूनी और गैरकानूनी को कानूनी बनाने के लिए अदालतों का एक बहुत बड़ा तंत्र स्थापित है जिस पर स्वयं भ्रष्टाचार के न जाने कितने आरोप लग चुके हैं। अदालतों ने घोटालेबाजों का न तो आज तक कुछ बिगाड़ा है और न आगे बिगाड़ सकते हैं। ये पूंजीपति वर्ग की सेवा के लिए बनाये गये हैं। इन पर आम जनता को भरोसा नहीं है जो खेतों-खलिहानों और फैक्ट्रियों में खून-पसीना बहाती है। फिर भी अन्ना जैसा कोई 'समाज-सेवी' भ्रष्टाचार के खिलाफ़ खड़ा होता है तो इनमें थोड़ी आस जगती है। पर अन्ना का समर्थन तो उन्होंने भी किया जो जनता को लूटने वाले शासक वर्ग के लोग हैं। अभिजात वर्ग के लोग भी उनके समर्थन में जा खड़े हुए। भ्रष्ट और घोटालेबाज नेता भी उनके समर्थन में मंच पर आने लगे जिन्हें अन्ना ने इसलिए दूर रहने के लिए कहा कि उनकी छवि पर आंच न आये। लेकिन मंच से दूर करने से क्या होगा, शासन तो वही चलायेंगे। अन्ना, अग्निवेश, किरण बेदी और केजरीवाल नहीं। अगर शासक वर्ग अन्ना की मर्जी का ही लोकपाल बिठाये तो जनता यह देखेगी कि वह भ्रष्टाचारियों और घोटालेबाजों के लिए क्या सजा मुकर्र करता है! वह तो महज इस शासन में एक सजावटी कठपुतला बना रहेगा जिस पर मेहनतकशों का पैसा ही व्यर्थ बर्बाद होगा। इसलिए अन्ना हर्गिज यह नहीं समझें कि उनकी जीत हुई है। शासक वर्ग ने बड़ी चालाकी से उन्हें इस बात के लिए मना लिया है कि वे शोर न मचायें। भ्रष्टाचार और घोटाले तभी खत्म होंगे जब मेहनत के शोषण और लूट पर आधारित इस पूंजीवादी व्यवस्था का नाश होगा। इसके अलावा दूसरे किसी विकल्प के बारे में नहीं सोचा जा सकता है।

सर्वविदित है कि अंग्रेज़ लुटेरे शासकों के जाने के बाद सत्ता देशी लुटेरों के हाथ में आ गई। इन लुटेरों ने जनता को जी भर कर लूटा है। इतना ही नहीं, दिन-प्रतिदिन लूट की रफ़्तार तीव्र से तीव्रतर होती जा रही है। पहले घोटाला करोड़ों का होता था, फिर सैंकड़ों करोड़ और अब तो लाखों करोड़ की सीमा भी लांघ चुके हैं। भ्रष्टाचार के खिलाफ़ जुट रही जनता इस बात का सबूत है कि वह मेहनत की इस लूट से बुरी तरह त्रस्त है। इसके विरुद्ध आंदोलन पर उतरी जनता इससे निजात पाने के लिए कुछ भी करने को तैयार दिखी। लेकिन वर्तमान आंदोलन का रुख एवं रवैये को समझने से ऐसा लगा जैसे कि कैंसर का इलाज करने के लिए शल्य चिकित्सा के बजाय मरहम लगाई जा रही हो। भ्रष्टाचार की रोकथाम को लेकर इन पूंजीवादी शासकों ने अब तक न जाने कितने नाटक किये हैं, कभी चौकसी विभाग की स्थापना की जाती है तो कभी सीबीसी तो कभी लोकपाल आदि की नियुक्तियां की गई हैं। यह एक ऐसा प्रपंच है जिसमें उन चोरों के द्वारा चोरों को पकड़ने का दिखावा किया जाता है जिनकी नकेल खुद लुटेरे शासकों के हाथ में रहती है। इतिहास गवाह है कि ज्यों-ज्यों ये नाटकबाजिया बढ़ती गईं, त्यों-त्यों भ्रष्टाचार बढ़ता गया। यदि शासक वर्गों की नीयत सही हो तो मौजूदा सीआरपीसी, आईपीसी व भ्रष्टाचार निरोधक कानून ही भ्रष्टाचार को रोकने के लिए पर्याप्त हैं।

- मनोज